पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
2020 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला संख्या 2114

==========

मुकेश कुमार पुत्र स्वर्गीय दिनेश्वर सिंह राठौर, निवासी गाँव-रानीपुर, डाकघर-कोडरा, पुलिस स्टेशन-पालीगंज, जिला-पटना।

..... याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. बिहार राज्य
2. प्रधान सचिव, लघु जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार, पटना, बिहार।
3. उप सचिव, लघु जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार, पटना, बिहार।
4. मुख्य अभियंता, लघु जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार, पटना।
5. मुख्य अभियंता (योजना, निगरानी, भूजल), लघु जल संसाधन विभाग, बिहार, पटना।
6. अधीक्षण अभियंता, लघु सिंचाई मंडल, गया।
7. कार्यकारी अभियंता, लघु सिंचाई मंडल, गया।
8. कार्यकारी अभियंता, लघु सिंचाई प्रभाग, जहानाबाद।

.... उत्तरदाता/गण

==========

उपस्थितिः

याचिकाकर्ता/ओं के लिए : श्री पारिजात सौरव, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी/ओं के लिए : श्री कृत्यानंद झा, अधिवक्ता

==========

याचिका-मुख्य अभियंता, लघु जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार द्वारा जारी आदेश के खिलाफ दायर की गई, जिसके तहत याचिकाकर्ता को नौकरी से बर्खास्त करने की सजा दी गई थी।

निर्णयः याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत कारण बताओ स्पष्टीकरण पर कोई विचार नहीं किया गया, जिसमें उन्होंने कानूनी बिंदुओं को उठाने के साथ-साथ आरोपों का खंडन भी किया था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने केवल इस आधार पर याचिकाकर्ता को बर्खास्त करने की सजा दी कि उन्होंने आरोपों का स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।आरोप केवल प्राथमिकी और

शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत के आधार पर सिद्ध किए गए हैं, जिसे विधिक साक्ष्य नहीं माना जा सकता। अनुशासनात्मक प्राधिकारी का निष्कर्ष किसी भी प्रमाण पर आधारित नहीं है; साथ ही याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं बताया गया है। (पैरा 15)

निचली अदालत के फैसले और अभियोजन पक्ष की विफलता को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि अपील प्राधिकारी ने इस न्यायालय के निर्देश के बावजूद स्थापित विधिक सिद्धांतों पर विचार नहीं किया। (पैरा 20)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।(पैरा 22)

==========

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

==========

गणपूर्ति : माननीय न्यायमूर्ति श्री हरीश कुमार

सी.ए.वी. निर्णय

तारीखः 18-02-2025

न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पारिजात सौरव और राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री कृत्यानंद झा को सुना गया ।

2. याचिकाकर्ता मुख्य अभियंता, लघु जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार, पटना द्वारा जारी ज्ञापन संख्या 1042 दिनांक 18.06.2014 में निहित आदेश से व्यथित है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को बर्खास्तगी की सजा दी गई है। याचिकाकर्ता ने बिहार सरकार, पटना के लघु जल संसाधन विभाग के अवर सचिव के हस्ताक्षर के तहत जारी ज्ञापन संख्या 7466 दिनांक 1 में निहित आदेश को भी रद्द करने की मांग की है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ दायर अपील को भी खारिज कर दिया गया है।संक्षेप में, याचिकाकर्ता ने पूरे विभागीय कार्यवाही को चुनौती दी, जिसमें आरोप पत्र के साथ-साथ जांच रिपोर्ट भी शामिल है, जिसके आधार पर बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया है।

3. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से लिए गए प्रासंगिक आवश्यक तथ्यों का सारांश नीचे दिया गया हैः

(i) याचिकाकर्ता को लघु सिंचाई प्रमंडल, गया में पत्राचार लिपिक के पद पर अनुकंपा के आधार पर विधिवत नियुक्त किया गया था। प्रासंगिक समय में, जब याचिकाकर्ता 24.12.2005 को उक्त पद पर काम कर रहा था, अमर कुमार श्रीवास्तव नामक व्यक्ति ने शिकायत दर्ज कराई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता की ओर से अनुकंपा के आधार पर उसकी नियुक्ति से संबंधित फाइल को आगे बढ़ाने के लिए अवैध रिश्वत की मांग की जा रही है। उक्त शिकायत के आधार पर निगरानी विभाग ने एक ट्रैप टीम का गठन किया और याचिकाकर्ता को 2500 रुपये की रिश्वत लेते हुए गिरफ्तार कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(डी) सहपठित धारा 13(2) के तहत निगरानी पी.एस. कांड संख्या 18/2005 दर्ज किया गया। याचिकाकर्ता को तुरंत न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया और 29.12.2015 से निलंबित कर दिया गया।

(ii) न्यायिक हिरासत से रिहा होने पर, याचिकाकर्ता का निलंबन ज्ञापन संख्या 468 दिनांक 07.06.2006 द्वारा निरस्त कर दिया गया था। रिश्वत लेने के उक्त आरोप पर और सतर्कता पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने पर, ज्ञापन संख्या 883 दिनांक 25.07.2006 द्वारा विधिवत आरोप ज्ञापन तैयार किया गया था और याचिकाकर्ता को अपना जवाब प्रस्तुत करने के लिए कारण बताओ जारी किया गया था। याचिकाकर्ता ने तुरंत 14.08.2006 को अपना जवाब प्रस्तुत किया और किसी भी रिश्वत की मांग करने और स्वीकार करने के आरोप से इनकार किया। याचिकाकर्ता ने संचालन अधिकारी से विभागीय कार्यवाही में आगे की कार्यवाही को मुकदमे के समापन तक रोकने का भी अनुरोध किया क्योंकि विभागीय कार्यवाही में आरोप सतर्कता पी.एस. की एफआईआर में आरोप की प्रतिरूप था। प्रकरण संख्या 18/2005। याचिकाकर्ता ने विभागीय कार्यवाही में अपनी उपस्थिति सुनिश्चित की तथा अपने बचाव के साथ आगे जवाब प्रस्तुत किया कि आरोप पत्र त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि

इसमें गवाहों और साक्ष्यों की सूची नहीं है; ऐसे आवेदन की प्रतियां अनुलग्नक-4, 5 और 6 श्रृंखला के रूप में अभिलेख पर रखी गई हैं।

(iii) याचिकाकर्ता के उपर्युक्त आवेदन/उत्तर प्रस्तुत करने के पश्चात विभागीय कार्यवाही में कोई ठोस प्रगति नहीं हुई थी। तथापि, वर्ष 2014 में विभागीय कार्यवाही पुनः पुनर्जीवित की गई तथा याचिकाकर्ता को ज्ञापन संख्या 389 दिनांक 22.02.2014 द्वारा तत्काल प्रभाव से पुनः निलंबित कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने नवनियुक्त जांच पदाधिकारी के समक्ष दिनांक 20.03.2014 को अपना अगला उत्तर प्रस्तुत किया तथा विभागीय कार्यवाही में उसे दोषमुक्त करने की प्रार्थना के साथ अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इन्कार किया। अधीक्षण अभियंता, लघु सिंचाई प्रमंडल, गया, जो विभागीय कार्यवाही के जांच पदाधिकारी थे, ने अंततः अपना जांच प्रतिवेदन पत्र संख्या 325 दिनांक 28.05.2014 में निहित करते हुए याचिकाकर्ता को आरोप का दोषी माना; जिसकी प्रतिलिपि रिट याचिका के अनुलग्नक-12 के रूप में अंकित है।

(iv) अनुशासनिक प्राधिकारी, मुख्य अभियंता, लघु जल संसाधन विभाग, पटना ने अपने पत्रांक 916 दिनांक 30.05.2014 के माध्यम से जांच रिपोर्ट पर याचिकाकर्ता से जवाब मांगा। याचिकाकर्ता ने अनुलग्नक-14 में निहित अपना दूसरा कारण बताओ जवाब 14.06.2014 को प्रस्तुत किया। हालांकि, याचिकाकर्ता के दूसरे कारण बताओ जवाब में कोई अनुकूलता नहीं पाई गई और अनुशासनिक प्राधिकारी ने अपने ज्ञापन संख्या 1042 दिनांक 18.06.2014 के माध्यम से सेवा से बर्खास्तगी की सजा दी। याचिकाकर्ता को निलंबन अवधि के दौरान केवल निर्वाह भत्ते का हकदार माना गया।

(v) व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने 03.07.2014 को अपनी वैधानिक अपील प्रस्तुत की तथा अपील ज्ञापन के साथ-साथ अनुपूरक आवेदन भी दायर किया। चूंकि अपील पर कोई विचार नहीं हुआ, इसलिए याचिकाकर्ता को इस न्यायालय के समक्ष सी.डब्लू.जे.सी. संख्या 14095/2014 दायर करने के लिए बाध्य होना पड़ा। जब मामला विचाराधीन था, इसी बीच याचिकाकर्ता के विरुद्ध आपराधिक मामले का

अंतिम रूप से विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया तथा याचिकाकर्ता को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया।

(vi) माननीय न्यायालय ने याचिकाकर्ता की अपील के लंबित रहने के दौरान बरी किए जाने के तथ्य को देखते हुए दिनांक 06.08.2019 के आदेश द्वारा रिट याचिका का निपटारा कर दिया, जिसमें याचिकाकर्ता को अपने बरी किए जाने के तथ्य और कैप्टन एम. पॉल एंथनी बनाम भारत गोल्ड माइंस लिमिटेड एवं अन्य [(1999) 3 एससीसी 379 और जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य [(2006) 5 एससीसी 446] के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को प्रस्तुत करके अपनी अपील को पूरक बनाने का निर्देश दिया। अपीलीय प्राधिकारी को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तर्कसंगत और स्पष्ट आदेश द्वारा घोषित कानून के आलोक में आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता के बरी किए जाने के उपरोक्त घटनाक्रम पर उचित विचार करने का निर्देश दिया गया।

(vii) रिट न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में याचिकाकर्ता ने 13.08.2019 तथा 16.08.2019 को अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष पूरक याचिका दायर की, जिसमें आपराधिक मामले में अपने दोषमुक्त होने तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के तथ्य को उजागर किया गया। अंततः याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील को अपीलीय प्राधिकरण द्वारा ज्ञापन संख्या 7466 दिनांक 17.10.2019 में निहित आदेश के तहत खारिज कर दिया गया।

(viii) बर्खास्तगी की सजा देने वाले अनुशासनिक प्राधिकरण के आदेश तथा पूर्वोक्त आदेश की पुष्टि करने वाले अपीलीय प्राधिकरण के आदेश दोनों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पारिजात सौरव ने सम्पूर्ण विभागीय कार्यवाही की वैधता तथा बर्खास्तगी के आदेश एवं उसकी पुष्टि पर प्रश्न उठाते हुए तर्क दिया है कि आरोप पत्र बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियमावली, 2005

(संक्षिप्त में नियम, 2005) के नियम 17(3)(4) के विरुद्ध है, क्योंकि विभाग द्वारा आरोपों को सिद्ध करने हेतु प्रस्तावित दस्तावेजों या गवाहों की सूची प्रस्तुत नहीं की गई। विभागीय कार्यवाही में विभाग की ओर से दो गवाहों श्री नवल किशोर प्रसाद एवं श्री देवेन्द्र नाथ मिश्रा, जिन्हें जब्ती सूची का गवाह बताया गया था, से पूछताछ की गई। उन्होंने लिखित रूप में अपना बयान दिया है तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों से इनकार किया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि याचिकाकर्ता को न तो उनकी मौजूदगी में पकड़ा गया था, न ही उन्होंने याचिकाकर्ता को रिश्वत लेते देखा था और न ही उसके पास से कोई रिश्वत राशि बरामद की गई थी। दोनों गवाहों ने कहा है कि उनसे पुलिस स्टेशन में प्री ट्रैप और पोस्ट ट्रैप मेमोरेंडम और अन्य दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करवाए गए थे। उपरोक्त दो गवाहों के अलावा किसी अन्य गवाह से पूछताछ नहीं की गई, न ही शिकायतकर्ता और सतर्कता दल के किसी सदस्य से पूछताछ की गई और न ही जिरह की गई और इस तरह आरोप साबित नहीं होते।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एफआईआर और एफआईआर के साथ संलग्न दस्तावेजों जैसे अमर कुमार श्रीवास्तव की शिकायत, प्री-ट्रैप और पोस्ट ट्रैप मेमोरेंडम, जो जांच के दौरान तैयार किए गए थे, पर बिना उनकी विषय-वस्तु के सबूत के भरोसा करना कानूनन पूरी तरह से अनुचित है। उपर्युक्त तर्क के समर्थन में, ***रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य [(2009) 2 एससीसी 570]*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया गया है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया कि याचिकाकर्ता को विशेष न्यायाधीश, सतर्कता-प्रथम, पटना की अदालत द्वारा विशेष मामला संख्या 31/2005 में दिनांक 18.05.2016 के निर्णय द्वारा आपराधिक मुकदमे में सम्मान पूर्वक बरी कर दिया गया था; अभियोजन पक्ष रिश्वत की मांग और याचिकाकर्ता से रिश्वत के पैसे की वसूली के आरोप को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है। विवादित मुकदमे में बरी होने

के मद्देनजर, जिसके खिलाफ सतर्कता विभाग की अपील भी खारिज कर दी गई थी, इस तथ्य के साथ कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप को साबित करने के लिए विभागीय कार्यवाही में कोई सबूत नहीं है, 18.06.2014 को खारिज करने का आदेश और 17.10.2019 को उसका अपीलीय आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है। ***कैप्टन एम पॉल एंथनी*** (उपरोक्त) और ***जीएम टैंक*** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए फैसलों पर भी भरोसा किया गया है। याचिकाकर्ता का यह भी तर्क है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण पर विचार करने में पूरी तरह विफल रहा है और उसे एक पंक्ति में खारिज कर दिया है, जो प्राकृतिक न्याय और निष्पक्ष खेल के सिद्धांतों की पूरी तरह अवहेलना है। इसी प्रकार अपीलीय प्राधिकारी ने भी याचिकाकर्ता द्वारा अपने अपील ज्ञापन में उठाए गए आधारों पर चर्चा नहीं की है। उपर्युक्त तर्क को पुष्ट करने के लिए, ***कर्न्स सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य [2014 (1) पीएलजेआर 622]*** में इस न्यायालय की विद्वान खंडपीठ की रिपोर्ट, विशेष रूप से उसके पैराग्राफ संख्या 11 पर भरोसा किया जाता है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री कृत्यानंद झा द्वारा उठाए गए उपर्युक्त तर्क को खारिज करते हुए राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने समर्पित किया कि अमर कुमार श्रीवास्तव द्वारा की गई शिकायत पर, सतर्कता जांच ब्यूरो, पटना ने एक जाल दल का गठन किया और याचिकाकर्ता को 29.12.2005 को 2500/- रुपये की रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों गिरफ्तार किया। याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया और न्यायिक हिरासत से रिहा होने के बाद, उसे आरोप पत्र सौंपा गया, जिसका याचिकाकर्ता ने अनुरोध किया कि आपराधिक कार्यवाही के परिणाम की प्रतीक्षा में अनुशासनात्मक कार्यवाही में कोई और कदम नहीं उठाया जाए। याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रार्थना पर विभागीय कार्यवाही काफी लम्बे समय तक लंबित रखी गई, किन्तु जब यह पाया गया कि आपराधिक मामले के शीघ्र निष्कर्ष की कोई संभावना नहीं है, तो आगे कार्यवाही करने का निर्णय लिया गया तथा तदनुसार विभागीय

कार्यवाही वर्ष 2014 में पुनः प्रारम्भ की गई। मुख्य अभियंता के आदेश से अधीक्षण अभियंता, लघु सिंचाई अंचल, गया को जांच पदाधिकारी तथा कार्यपालक अभियंता, लघु सिंचाई प्रमंडल, गया को प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारी नियुक्त किया गया। याचिकाकर्ता ने अपना लिखित बचाव प्रस्तुत किया, जिस पर विधिवत विचार किया गया तथा अन्ततः जांच पदाधिकारी ने पत्रांक 325 दिनांक 28.05.2014 द्वारा जांच प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें याचिकाकर्ता के विरूद्ध आरोप सिद्ध पाए गए। याचिकाकर्ता को दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसका याचिकाकर्ता ने जवाब भी दिया और अंत में अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने ज्ञापन संख्या 1042 दिनांक 18.06.2014 के तहत दण्डित किया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी पुष्टि की गई।

8. राज्य के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि सी.डब्लू.जे.सी. संख्या 14095/2014 में माननीय न्यायालय के आदेश के अनुसरण में अपीलीय प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता द्वारा अपनी पूरक अपील याचिका में संदर्भित निर्णयों पर विधि विभाग की राय मांगी है। विधि विभाग ने स्पष्ट रूप से कहा है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक निर्णयों में माना है कि विभागीय कार्यवाही और आपराधिक कार्यवाही एक साथ अपराधी के विरुद्ध शुरू की जा सकती है और किसी भी कार्यवाही का परिणाम दूसरी कार्यवाही को प्रभावित नहीं कर सकता है, क्योंकि दोनों कार्यवाही में आरोपों को अलग-अलग मानदंडों पर साबित किया जाना है। अंत में यह तर्क दिया गया है कि यह एक खुला और बंद मामला है, जिसमें याचिकाकर्ता को रिश्वत लेते हुए पकड़ा गया था और आरोप सिद्ध पाए जाने पर उसे दंडित किया गया है; इसके अलावा आरोपित आदेशों में कोई कमी नहीं है और इसलिए इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. इस न्यायालय ने संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को उत्सुकतापूर्वक सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है, तथा आरोप पत्र, जांच रिपोर्ट और आरोपित आदेशों का भी

बारीकी से अध्ययन किया है। मामले के गुण-दोष पर विचार करने से पहले, यह न्यायालय विभागीय अधिकारियों की दयनीय स्थिति को देखने के लिए बाध्य है, जिन्होंने विभागीय कार्यवाही का निर्णय करने के लिए डेढ़ दशक से अधिक समय तक मामले पर विचार किया। यद्यपि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे में न केवल आपराधिक मामलों में मुकदमे के शीघ्र निपटान का अधिकार शामिल है, बल्कि ऐसे मामले भी जो सिविल प्रकृति के हैं और विभागीय कार्यवाही के हैं, उनका भी बिना किसी अनावश्यक देरी के निपटारा किया जाना चाहिए। एक व्यक्ति जो एक दशक से अधिक समय से अपने सिर पर तलवार लटकाए हुए है, वह स्पष्ट रूप से भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत मामलों के शीघ्र निपटान के अधिकार का उल्लंघन है। बिहार सरकार के सामान्य प्रशासन विभाग ने विभागीय कार्यवाही के निपटान के लिए समय-सीमा निर्धारित करते हुए पत्र जारी किए हैं, विशेष रूप से जालसाजी के मामलों में, क्योंकि किसी भी तरह के भ्रष्टाचार से सख्ती से निपटा जाना चाहिए और उसे उसके तार्किक निष्कर्ष पर लाया जाना चाहिए ताकि दोषियों को उचित समय के भीतर उचित सजा दी जा सके। सामान्य प्रशासन विभाग ने अपने पत्र संख्या 2324 दिनांक 10.07.2007, तथा पत्र संख्या 1893 दिनांक 14.06.2011, संख्या 2763 दिनांक 26.02.2024 तथा वर्ष 2015 में पत्र संख्या 12787 दिनांक 28.08.2015 के माध्यम से विभागीय कार्यवाही की समय-सीमा तथा चरणबद्ध निपटान निर्धारित किया था, क्योंकि प्रतिवादी प्राधिकारी ऐसे सभी निर्देशों से अनभिज्ञ हैं तथा बिहार सरकार द्वारा निर्धारित समय-सीमा का पालन नहीं किया जा रहा है, अतः यह न्यायालय विभागीय कार्यवाही के चरणबद्ध निपटान के लिए समय-सीमा निर्धारित करने वाले प्रासंगिक पत्र संख्या 12787 दिनांक 28.08.2015 के अंश को उद्धृत करने के लिए बाध्य है।

"..... 2. इसके बावजूद सरकार के समक्ष ऐसे दृष्टांत आ रहे है जिनमें विभागीय कार्यवाहियों कई वर्षों तक लंबित रहती है। विशेष कर निगरानी विभाग द्वारा रंगे हाथों पकड़े जाने वाले मामलों में (टेप केसेस) में साक्ष्य की अनुपलब्धता का हवाला देकर विभागीय कार्यवाहियों को 6-7 वर्षों तक तार्किक परिणति तक नहीं पहुँचाया जाता है। ऐसा होने स न केवल भ्रष्टाचार के प्रति सरकार के जीरो टोलरेंस की नीति पर

आघाता होता है, बल्कि रंगे हाथों पकड़े गये सरकारी सेवकों को ससमय उचित दंड नहीं मिलने से अन्य सरकारी सेवकों में भी गलत संदेश जाता है। सरकार द्वारा इसे काफी गंभीरता से लिया गया है।

3. निगरानी विभाग द्वारा रंगे हाथों पकड़े जाने वाले मामलों (टेप केसेस) में विभागीय कार्यवाही के त्वरित संचालन हेतु साक्ष्य की उपलब्धता सुनिश्चित करने के संबंध में विभागीय परिपत्र सं0-17696 दिनांक -23.12.2014 द्वारा विस्तृत दिशा निदेश दिये गये हैं। सरकार विशेष कर ऐसे मामलों में विभागीय कार्यवाही के कालबद्ध निष्पादन एवं उसे तार्किक परिणति तक पहुँचाने को प्रतिबद्ध है। इस उद्देश्य से सम्यक विचारोपरांत सरकार द्वारा ऐसे मामलों में विभागीय कार्यवाही के विभिन्न चरणों को पूरा करने के निमित्त निम्नवत् समय-सीमा निर्धारित की जाती है-

विभिन्न चरण	समय- सीमा
(1) रंगे हाथों पकड़े जाने के उपरांत निगरानी विभाग द्वारा आवश्यक साक्ष्य से संबंधित सभी कागजातों के साथ संबंधित सरकारी सेवक के संवर्ग नियंत्री विभाग एवं पदस्थापना विभाग को सूचना का प्रेषण।	एक सप्ताह
(2) संबंधित अनुशासनिक प्राधिकार द्वारा उक्त साक्ष्यों एवं कागजातों तीन सप्ताह के आधार पर आरोप-पत्र 'प्रपत्र क' गठन।	तीन सप्ताह
(3) आरोप पत्र (साक्ष्य सहित) आरोपित सरकारी सेवक को भेजा जाना /दो माह आरोपित सरकारी सेवक द्वारा लिखित बयान देना/लिखित बयान के आधार पर निष्कर्ष का अभिलेखन एवं अनुशासनिक प्राधिकार द्वारा विभागीय कार्यवाही हेतु अग्रेतर कार्रवाई का विनिश्चय।	दो माह
(4) संचालन पदाधिकारी के द्वारा बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण तीन माह एवं अपील) नियमावली, 2005 (समय-समय पर यथा संशोधित) के नियम-17 के अनुसार विभागीय जाँच की कार्रवाई संपन्न करने एवं जॉच प्रतिवेदन समर्पित करने की अवधि।	तीन माह
(5) उक्त नियमावली के नियम-18 के अनुसार कार्रवाई करते हुए दो माह मामले को तार्किक परिणति तक पहुँचाना।	दो माह
	कुल-आठ माह

....."

10. उपर्युक्त पत्र को पढ़ने से, ट्रैप मामलों से संबंधित विभागीय कार्यवाही को विशेष रूप से 8 महीने की अवधि के भीतर अपने तार्किक निष्कर्ष पर लाया जाना आवश्यक है, लेकिन इस मामले में, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अधिकारियों ने विभागीय कार्यवाही का निपटान करने में एक दशक से अधिक समय व्यतीत कर दिया है, जो चिंताजनक है और यह न्यायालय राज्य द्वारा तैयार किए गए अपने दिशानिर्देशों का स्पष्ट उल्लंघन देखकर स्तब्ध है।

11. अब हम उन वैधानिक नुस्खों के संबंध में मुद्दे पर आते हैं जिनका पालन सीसीए नियम, 2005 के अनुसार विभागीय कार्यवाही का संचालन करते समय किया जाना आवश्यक है। यह स्पष्ट किया जाता है कि वैधानिक नियमों का कोई भी उल्लंघन अधिकारियों की कार्रवाई और उनके आदेश को कानून में अस्थिर घोषित करने के लिए कमजोर बनाता है। नियम, 2005 के नियम 17 में प्रमुख दंड लगाने की प्रक्रिया निर्धारित की गई है। नियम 17(1) और (2) अनुशासनिक प्राधिकारी को बाध्य करता है कि नियम 14 में निर्दिष्ट किसी भी दंड को लागू करने का कोई भी आदेश इन नियमों में दिए गए तरीके से जांच किए बिना नहीं किया जाएगा। यदि अनुशासनिक प्राधिकारी की राय है कि किसी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ कदाचार या दुर्व्यवहार के किसी भी आरोप की सच्चाई के बारे में जांच करने के लिए आधार हैं, तो वह स्वयं इसकी जांच कर सकता है, या इन नियमों के तहत इसकी सच्चाई के बारे में जांच करने के लिए एक प्राधिकारी नियुक्त कर सकता है। नियम 17(3) आगे निर्देश देता है कि इस नियम के तहत किसी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ जांच करने के लिए, अनुशासनिक प्राधिकारी कदाचार या दुर्व्यवहार के आरोपों के सार को एक निश्चित और अलग आरोप के रूप में तैयार करेगा या तैयार करवाएगा, आरोप के ज्ञापन में ऐसे दस्तावेजों की एक सूची होगी जिनके द्वारा और ऐसे गवाहों की सूची होगी जिनके द्वारा आरोप के लेखों को बनाए रखने का प्रस्ताव है। नियम 17 (4) अनुशासनिक प्राधिकारी को आरोप-पत्र की एक प्रति, कदाचार या

दुर्व्यवहार के आरोपों के विवरण तथा दस्तावेजों और गवाहों की सूची के साथ अपने बचाव का लिखित बयान प्रस्तुत करने के निर्देश के साथ सौंपने के लिए बाध्य करता है। जांच प्राधिकारी पर यह भी दायित्व डाला गया है कि वह अपराधी को आवश्यक दस्तावेज प्रस्तुत करे, बशर्ते कि जांच प्राधिकारी लिखित रूप में अपने द्वारा दर्ज किए जाने वाले कारणों से ऐसे दस्तावेजों की मांग करने से इंकार कर सकता है, जो उसकी राय में मामले से संबंधित नहीं हैं। नियम 17 (16) से पता चलता है कि जब अनुशासनिक प्राधिकारी का मामला बंद हो जाता है, तो सरकारी कर्मचारी को मौखिक या लिखित रूप में अपना बचाव प्रस्तुत करना होगा, जैसा वह पसंद करे। उसके बाद सरकारी कर्मचारी की ओर से बचाव प्रस्तुत किया जाएगा और प्रस्तुत किए गए गवाहों की जांच की जाएगी और उनसे जिरह की जाएगी।

12. इस मामले में आरोप एफआईआर में लगाए गए आरोप से एक ही है, जिसमें अवैध रिश्वत की मांग की गई है और याचिकाकर्ता को शिकायतकर्ता अमर कुमार श्रीवास्तव से 2500 रुपये की रिश्वत लेते हुए पकड़ा गया है। बेशक, आरोप ज्ञापन में न तो दस्तावेजों की सूची है और न ही उन गवाहों की सूची है जिनके द्वारा आरोप के लेखों को बनाए रखने का प्रस्ताव है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि दोषी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को सबूतों के आधार पर साबित किया जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने असंख्य निर्णयों में यह स्पष्ट किया है कि बड़ी सजा के आरोपों को रखने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य दर्ज करना एक अनिवार्य शर्त है। रूप सिंह नेगी (सुप्रा) के मामले में समान मुद्दे पर विचार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा, एफआईआर को तब तक साक्ष्य नहीं माना जा सकता जब तक कि गवाहों द्वारा इसकी सामग्री साबित न हो जाए। इस मुद्दे को उजागर

करने के लिए उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ को संक्षेप में प्रस्तुत करना उचित होगा:

> ***14.*** *निस्संदेह, विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोप सिद्ध होने चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री पर विचार करके निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह की जांच नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज पेश किए और उनकी सामग्री को साबित नहीं किया। जांच अधिकारी ने अन्य बातों के साथ-साथ एफआईआर पर भरोसा किया, जिसे सबूत नहीं माना जा सकता था।*
>
> ***23.*** *इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकरण और अपीलीय प्राधिकरण के आदेश का किसी भी कारण से समर्थन नहीं किया गया है। उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर सिविल परिणाम हो सकते हैं, उचित कारण बताए जाने चाहिए थे। यदि जांच अधिकारी ने अपीलकर्ता द्वारा किए गए इकबालिया बयान पर भरोसा किया होता, तो कोई कारण नहीं था कि उसी साक्ष्य के आधार पर आपराधिक अदालत द्वारा पारित रिहाई के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था। दोष को इंगित करने वाली रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री*

को साबित किया जाना आवश्यक है। कुछ सबूतों के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य हो। साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान विभागीय कार्यवाही में लागू नहीं हो सकते हैं, लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू होते हैं। चूंकि जांच अधिकारी की रिपोर्ट केवल अपने आप में ही दीक्षित और अनुमानों और अनुमानों पर आधारित थी, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं थे। जैसा कि सर्वविदित है, संदेह चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, किसी भी परिस्थिति में उसे कानूनी सबूत का विकल्प नहीं माना जा सकता।

13. अब रिट याचिका के अनुलग्नक-12 में दी गई जांच रिपोर्ट पर आते हैं, इस न्यायालय को लगता है कि यह उनकी ओर से की गई एक लापरवाही है और जांच केवल नाम मात्र के लिए है। आरोपों के सिद्ध होने के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले न तो दस्तावेजों को साबित करने के लिए मौखिक साक्ष्य और न ही याचिकाकर्ता के बचाव पक्ष के स्पष्टीकरण पर विचार किया गया है। यह ध्यान देने योग्य होगा कि जब्ती सूची के गवाहों अर्थात् श्री नवल किशोर प्रसाद और श्री देवेंद्र नाथ मिश्रा की जांच अधिकारी द्वारा विधिवत जांच की गई थी, लेकिन उनमें से किसी ने भी आरोप का समर्थन नहीं किया, बल्कि उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि याचिकाकर्ता को न तो उनकी उपस्थिति में पकड़ा गया था और न ही उन्होंने याचिकाकर्ता को रिश्वत लेते या उसके कब्जे से कोई बरामदगी करते देखा था। यह तथ्य है कि रिश्वत की रकम एक टेबल डेस्क से बरामद की गई है। जांच रिपोर्ट में ऐसा कुछ भी नहीं है कि जांच अधिकारी इस निष्कर्ष पर कैसे पहुंचे कि आरोप सिद्ध हो गए हैं। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए जांच अधिकारी ने एफआईआर की प्रति पर

भरोसा किया है, जिसमें शिकायतकर्ता द्वारा दर्ज की गई शिकायत और ट्रैप से पहले और बाद का ज्ञापन शामिल है। एफआईआर का केवल एक विवरण है और उसी के आधार पर आरोपों को साबित करने के लिए जांच पूरी की गई। यह ध्यान देने योग्य होगा कि किसी भी मौखिक साक्ष्य की जांच के बिना, दस्तावेजों और उनकी सामग्री को स्वचालित रूप से साबित नहीं किया जा सकता है, जब तक कि दस्तावेज स्वीकार नहीं किए जाते हैं या प्रकृति में सार्वजनिक नहीं होते हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा [(2010) 2 एससीसी 772]** के मामले में जांच अधिकारी की स्थिति और कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि किसी भी कार्यवाही में कर्मचारी के साथ निष्पक्ष व्यवहार किया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप उसे सजा दी जा सकती है। उपर्युक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि अर्ध न्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत जांच अधिकारी स्वतंत्र न्यायधीश की स्थिति में होता है, उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 28 त्वरित संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है:

> *"**28.** अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक के स्थान पर होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उनका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि अपराधी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अप्रमाणित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त है कि आरोप साबित हुए हैं।वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है।चूंकि किसी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेजों को*

साबित नहीं किया गया है, और इस निष्कर्ष पर विचार नहीं किया जा सकता है कि उत्तरदाताओं के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।"

14. यहां यह अवलोकन करना भी प्रासंगिक है कि विभागीय कार्यवाही के दौरान शिकायतकर्ता की गैर-जांच से सरकारी कर्मचारी को जिरह के अवसर से वंचित कर दिया जाता है और यह निश्चित रूप से अपराधी का अधिकार के लिए पूर्वाग्रह पैदा करेगा। [***पुलिस आयुक्त, दिल्ली और अन्य बनाम जय भगवान, (2011) 6 एस. सी. सी. 376***]

15. अब बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश पर आते हुए, इस न्यायालय ने आगे पाया कि याचिकाकर्ता के कारण बताए बताओ स्पष्टीकरण पर कोई चर्चा नहीं हुई है जिसमें उसने आरोपों को खारिज करने के अलावा कई कानूनी मुद्दे उठाए हैं। अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने बर्खास्तगी की सजा केवल इस आधार पर दी है कि आरोपों का कोई स्पष्ट स्पष्टीकरण नहीं है। कहा जाता है कि आरोप केवल प्राथमिकी और शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत के आधार पर साबित होते हैं, जिसे कानूनी सबूत नहीं कहा जा सकता है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है; याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए कारण बताए जाने के संबंध में कोई चर्चा नहीं है कि उन्हें क्यों स्वीकार नहीं किया जाता है।

16. अब इस मुद्दे पर आते हैं कि आपराधिक कार्यवाही में बरी होने का क्या प्रभाव होगा क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा फाइल की गई अपील के लंबित रहने के दौरान बरी होने का आदेश पारित किया गया है; इसलिए यह मुद्दा भी इस स्तर पर विचार करने की आवश्यकता है। **जी. एम. टैंक** (उपरोक्त) के मामले में अपराधी पर असंगत आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक चल या अचल संपत्तियों के आरोप लगाने का आरोप लगाया गया था।विभागीय जांच करने के बाद उन्हें उक्त बर्खास्तगी आदेश के खिलाफ सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, उन्होंने रिट याचिका को प्राथमिकता दी जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश ने निष्कर्ष निकाला कि अपराधी के खिलाफ पर्याप्त सबूत थे और इस प्रकार याचिका को खारिज

कर दिया।अपराधी ने लेटर्स पेटेंट अपील को प्राथमिकता दी जिसे भी खारिज कर दिया गया। इन दोनों आदेशों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इस तर्क के साथ चुनौती दी गई थी कि अपराधी के खिलाफ आपराधिक शिकायत की रोकथाम के लिए भ्रष्टाचार निवाण अधिनियम 1947 के दंडात्मक प्रावधानों के तहत भी दर्ज की गई थी, जो तथ्यों, आरोपों, साक्ष्य और गवाहों के एक ही समूह पर आधारित है जिसमें आपराधिक अदालत ने अपीलार्थी को यह अभिनिर्धारित करते हुए उक्त अपराध से सम्मान से बरी कर दिया कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने में विफल रहा।निचली अदालत द्वारा बरी किए जाने के तथ्य को उच्च न्यायालय की विद्वत खंड पीठ के संज्ञान में लाया गया था, लेकिन उसने इस पर विचार नहीं किया था।

17. उपरोक्त तथ्यों के आधार पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए माना है कि यदि विभागीय कार्यवाही और आपराधिक मामला समान और समान तथ्यों पर आधारित है और अपीलकर्ता के खिलाफ विभागीय मामले में आरोप और आपराधिक अदालत के समक्ष आरोप एक ही हैं और आपराधिक अदालत ने जांच के बाद निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता के खिलाफ किसी भी उचित संदेह से परे दोष साबित नहीं किया है और अपने न्यायिक घोषणाओं द्वारा अपीलकर्ता को बरी कर दिया है, तो विभागीय कार्यवाही में दर्ज निष्कर्ष को स्वीकार करना अन्यायपूर्ण और अनुचित होगा। माननीय न्यायालय ने आगे कहा कि चूंकि विभागीय और आपराधिक कार्यवाही में तथ्य और साक्ष्य समान थे, इसलिए अपीलकर्ता को सफल होना चाहिए। दृष्टिकोण और सबूत के बोझ के आधार पर विभागीय और आपराधिक कार्यवाही के बीच आमतौर पर जो अंतर साबित होता है, वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होगा।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***राम लाल बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य*** के मामले में ***[(2024(1) एससीसी 175]*** ने आपराधिक

कार्यवाही में दोषमुक्ति के प्रभाव पर विचार करते हुए माना है कि आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्ति अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पर पूर्ण विचार करने के बाद की गई थी और अभियोजन पक्ष आरोप को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा; इसलिए इस पर निर्णय केवल निर्णय को पूरी तरह से पढ़ने के बाद ही किया जा सकता है। न्यायिक समीक्षा में न्यायालय निर्णय के सार की जांच करने के लिए बाध्य है और प्रयुक्त अभिव्यक्ति के रूप पर नहीं जाना चाहिए। निर्णयों में प्रयुक्त "संदेह का लाभ" और "सम्मानपूर्वक दोषमुक्त" अभिव्यक्तियों को जादू-टोना नहीं समझा जाना चाहिए। ऐसी शब्दावली के मात्र उपयोग से न्यायालय प्रभावित नहीं होगा। माननीय न्यायालय ने पाया कि आरोप न केवल समान थे बल्कि समान थे और साक्ष्य, गवाह और परिस्थितियाँ सभी एक जैसी थीं, इसलिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी के आदेशों को रद्द कर दिया क्योंकि उन्हें कायम रखना अन्यायपूर्ण, अनुचित और दमनकारी।

19. यह न्यायालय ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित निर्णय का अध्ययन करने के बाद यह भी पाता है कि रिश्वत लेने के आरोप को साबित करने के लिए कुल 17 गवाहों की जांच की गई और मौखिक साक्ष्य के अलावा अभियोजन पक्ष ने विभिन्न दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए। हालांकि, अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों के साक्ष्यों पर समुचित विचार करने के पश्चात निचली अदालत ने निम्न प्रकार से निर्णय दिया हैः

> *"उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्त द्वारा रिश्वत की मांग करने, शिकायतकर्ता द्वारा रिश्वत की राशि देने तथा अभियुक्त के कब्जे से उसकी बरामदगी का अभिलेख बनाना पूर्णतः मिथ्या प्रतीत होता है, क्योंकि यदि छापा मारने वाली टीम ने अभियुक्त को दोपहर 2 बजे गिरफ्तार किया था, तो वे अभियुक्त के साथ दोपहर 12.30 बजे गया कोतवाली थाने में कैसे पहुंचे, जैसा कि पी.डब्लू.16 ने बयान दिया है।*

उपरोक्त तथ्यों, परिस्थितियों, साक्ष्यों तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए मैं पाता हूं कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त मुकेश कुमार के विरुद्ध पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 तथा धारा 13(1)(डी) के साथ धारा 13(2) के तहत आरोप सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा है, अतः उसे उक्त अपराधों के लिए दोषी नहीं माना जाता है। और अंततः इस मामले से बरी हो जाता है। चूंकि आरोपी जमानत पर है, इसलिए उसे जमानत बांड की देनदारियों से भी मुक्त किया जाता है, जिसे रद्द किया जाता है। मौखिक निर्देशित तथा शुद्धिकृत "

20. ट्रायल कोर्ट के फैसले पर विचार करने और यह पाए जाने पर कि अभियोजन पक्ष आरोपों को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है, इस न्यायालय ने पाया कि अपीलीय प्राधिकारी सीडब्ल्यूजेसी संख्या 14095/2014 में इस न्यायालय के निर्देश के बावजूद स्वीकृत स्थापित कानूनी स्थिति पर विचार करने में विफल रहा। इसके अलावा अपीलीय आदेश रहस्यमय होने के अलावा, अपील के ज्ञापन में लिए गए आधारों पर कोई चर्चा नहीं है और इस तरह अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित विवादित आदेश पूरी तरह से विधि विभाग की राय पर आधारित है, जिसमें स्वतंत्र विचार का उपयोग नहीं किया गया है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अपील का प्रावधान केवल औपचारिकता नहीं है, बल्कि एक वैधानिक तंत्र है जहां मूल प्राधिकारी के आदेश में त्रुटि को ठीक किया जा सकता है, यदि अपील के ज्ञापन में उठाए गए आधारों पर यह त्रुटिपूर्ण पाया जाता है। यहां, कर्न्स सर्विस प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा) के निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफों को संक्षेप में प्रस्तुत करना उचित होगा, जहां विद्वान न्यायालय ने कारण बताने के महत्व पर जोर देते हुए कहा है कि अंतिम आदेश में अपराधी द्वारा उठाए गए आधारों पर पूरी तरह से विचार किया जाना चाहिए। इसका पैराग्राफ-11 नीचे उद्धृत किया गया है:

"11. प्राकृतिक न्याय बहुत व्यापक अर्थ वाला शब्द है। इसे किसी सीधे-सादे सूत्र में नहीं रखा

जा सकता। इसकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगी। इसका अर्थ केवल कारण बताओ नोटिस देने और उत्तर स्वीकार करने की औपचारिकता पूरी करना नहीं हो सकता। अंतिम आदेश में कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित आधारों, उत्तर में दिए गए बचाव, तथा उसके बाद कम से कम बचाव का संक्षिप्त विश्लेषण करके यह दर्शाना चाहिए कि वह स्वीकार्य क्यों नहीं था। यह मान लेना कि दिखाए गए कारण को यह कहकर एक पंक्ति में सरसरी तौर पर खारिज किया जा सकता है कि यह हमारे विचार में संतोषजनक या स्वीकार्य नहीं था, प्राधिकरण को पूरी तरह से मनमानी और अनियंत्रित शक्तियां प्रदान करना होगा। किसी स्थिति में यदि संबंधित प्राधिकरण को दिखाए गए कारण से निपटना और उसे खारिज करना मुश्किल लगता है, तो उसके लिए यह बहुत सुविधाजनक होगा कि वह मामले पर चर्चा न करे और केवल यह कहकर उसे खारिज कर दे कि यह स्वीकार्य नहीं था। स्वीकार्य है। ऐसी स्थिति में कारण बताना एक परम अनिवार्यता है और प्राकृतिक न्याय का एक पहलू है। कारणों को आदेश का हृदय और आत्मा माना जाता है जो आदेश के निर्माता के दिमाग को अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, और यह कि उसने सभी प्रासंगिक पहलुओं पर विचार किया और अप्रासंगिक पहलुओं को त्याग दिया।"

21. उपर्युक्त कानूनी स्थिति को देखते हुए, यह न्यायालय यह पाता है कि ज्ञापन संख्या 1042 में निहित दिनांक 18.06.2014 के साथ-साथ ज्ञापन संख्या 7466 में दिनांक 17.10.2019 के आरोपित

आदेश कानून की दृष्टि से अस्थिर माने जाते हैं, और इस प्रकार इन्हें अपास्त किया जाता है। आरोपित आदेशों को अपास्त करने के परिणामस्वरूप, प्रतिवादी अधिकारियों को नियम, 2005 के नियम 13(3) और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार तथा ***दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय एवं अन्य*** **[(2013) 10** एससीसी **324]** के मामले में दिए गए निर्णय, विशेष रूप से इसके पैराग्राफ-38 के अनुसार याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाता है।

22. रिट याचिका उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ स्वीकार की जाती है।

23. यदि कोई लंबित आवेदन है तो उसका भी निपटारा किया जाता है।

(हरीश कुमार, न्यायमूर्ति)

अंजनी/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।